'बौद्ध धर्म का सामाजिक प्रभाव

डॉ. सुनील कुमार सिंह गौतम,
असिस्टेंट प्रोफेसर
एस0एम0आर0डी0पी0जी0 कालेज,
गुडकुड़ा, गाजीपुर

समाज को सुव्यवस्थित एवं आदर्श रूप प्रदान करना शुरू से ही भारतीय ऋषि-मुनियों की प्राथमिकता रही है। जब भी समाज अनैतिकता के कारण पथभ्रष्ट होकर अराजकता की स्थिति में पहुंचा है, तब-तब युग प्रवर्तकों ने समाज को एक नई दिशा देने का काम किया है। इसका स्पष्ट उदाहरण हम भगवद्?गीता में पाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण कहते है जब-जब धरती पर अधर्ग का बोलबाला अधिक हो जाता है तब में स्वयं अधर्म का अंत करने एवं धर्म की विजय के लिए अवतार लेता हूँ। ठीक इसी प्रकार छठी शताब्दी ईसा पूर्व अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का उदय हुआ जिसमें कुल 62 सम्प्रदायों की चर्चा पाते हैं. उसी में एक बौद्ध सम्प्रदाय भी था। इस समय न सिर्फ भारत में बल्कि भारत से बाहर चीन ईरान तथा यूनान में भी आन्दोलन चला तथा इसे दिशा देने का काम क्रमशः कन्फ्यूशियस, जरथुस्ट्र तथा पाइथागोरस ने किया। भारत में खास कर मध्य गंगा मैदान या मगध इसका केन्द्र था। इस सामाजिक परिवर्तन को आन्दोलित करने का काम महात्मा बुद्ध ने किया। यह एक प्रतिवाद था और वह प्रतिवाद वैदिक संस्कृति के विरूद्ध था। वैदिक संस्कृति में व्याप्त वेद-वाद, यज्ञ-कर्मकाण्ड, जातिप्रथा, छुआ-छूत पशुबलि प्रथा, नैतिक मूल्यों का हास प्रतिवाद का मूल विषय था।'

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रत्येक युग में प्रत्येक समाज की एक सर्वव्यापी विशेषता रही है। समाज जैसे-जैसे सरलता से जटिलता की ओर बढ़ता जाता है. 'सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन की गति तीव्र होती जाती है। इसी सन्दर्भ में प्रो0 ग्रीन का मत है कि 'सामाजिक परिवर्तन समाज में सदैव विद्यमान रहता है, क्योंकि प्रत्येक समाज में कुछ-न-कुछ मात्रा में असन्तुलन सदैव बना रहता है। समाज में अधिकांश व्यक्ति या तो इस असन्तुलन को दूर करने के लिए नई व्यवस्था के पक्ष में हो जाते हैं अथवा वे परिवर्तन

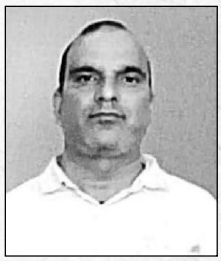

लाने का प्रयत्न करने वाले व्यक्तियों का विरोध करते हैं। ये दोनों ही दशाएँ सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहन देती है या हम कह सकते है कि परिवर्तन एक सर्वव्यापी नियम है। यदि परिवर्तन नहीं होगा तो विकास की गति रुक जायेगी। 'सामाजिक परिवर्तन से हमारा तात्पर्य सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन होना है. अर्थात् समाज के आकार, इसके विभिन्न अंगो के बीच के सन्तुलन अथवा समाज के संगठन में होने वाला परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है। दूसरे शब्दों में सामाजिक परिवर्तन वह स्थिति है जिसमें समाज द्वारा स्वीकृत सम्बन्धों प्रक्रियाओं, प्रतिमानों और संस्थाओं का रूप इस सीमा तक परिवर्तित हो जाता है कि उनसे पुनश्च अनुकूलन करने की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

'Social change is a state of being in which all the Sanctioned mode of relationship, Processes, Patterns and institutions change to such an extend that the problem of readjustment becomes a necessity', वैसे तो परिवर्तन के लिए बहुत से कारण उत्तरदायी होते है- आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक कारण की अहम भूमिका होती है। पर ईसा पूर्व छठी शताब्दी में उसमें लोहा का व्यापक प्रयोग आर्थिक क्षेत्र में क्रातिकारी परिवर्तन लाया। कृषि कार्य में इसका योगदान अहम रहा। कृषि कार्य में लौह यत्र का प्रयोग होने से अनाज के उत्पादन में वृद्धि अधिशेष अन्न का उत्पाद शहरीकरण को बढ़ावा दिया। ईसा पूर्व 600 से 300 के बीच देश में 60 नगरों के अस्तित्व का प्रगाण मिलता है।' नगरों में स्वाभाविक रूप से अधिकतर शिल्पकार तथा छोटे-बड़े वाणिज्यिक वर्ग का उदय, मुद्रा के प्रचलन के कारण व्यापार में विस्तार हुआ। कृषि तथा व्यापार में क्रातिकारी विकाश के कारण कबायली

जीवन की परम्परागत मान्यताएँ टूटने लगी। इससे आर्थिक उन्नति हुई और समाज में नये वर्गों का उदय हुआ। पूर्व के कुछ वैदिक परम्पराएँ विकास में बाधक साबित हो रही थी वहाँ महात्मा बुद्ध ने उसमें सुधार का प्रयास किया। चूँकि आर्थिक सम्पन्नता से सामाजिक संरचना में क्रांतिकारी परिरवर्तन हो रहा था। समाज में कबिलाई व्यवस्था समाप्त हो रही थी तथा वैदिक संस्कृति जिसमें यज्ञ विधान, पशु-बलि प्रथा, जातिवाद जैसी समस्यायों को श्रवण-संस्कृति नहीं मान रहे थे। बौद्ध धर्म ने वेद की प्रमाणिकता का खण्डन किया और वेदवाद का विरोध किया। इसी प्रकार यज्ञ कर्मकाण्ड के लिए भी कोई स्थान नहीं था। जाति प्रथा की घोर आलोचना की गयी। इससे जितने भी अछूत जाति के लोग थे जिसे ब्राहम्ण समाज ने बहिष्कृत किया था वो सभी इत्त धर्म को स्वीकार किया। साथ ही यह घोर अहिंसावादी होने के कारण पशु-वध के विधान वाले यज्ञ का भी विरोध करना बौद्ध धर्म के लिए स्वाभाविक था। बौद्ध अनुयायियों ने निर्वाण प्राप्ति के निमित्त सभी के लिए दरवाजे खोल दिये, जबकि वैदिक सस्कृति में ये सिर्फ कुछ खास जाति के लिए ही निर्धारित था। इतना ही नहीं समाज में जन्म आधारित चतुवर्णी व्यवस्था का विरोध करते हुए कर्म को प्रश्रय दिया गया तथा इन्होंने कर्म को ही वर्ण तथा जाति का आधार माना है। कर्म से ही कोई ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र होता है। बौद्ध ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि लोग पशु-वध के कारण पुरोहितों की निंदा करते हैं और शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय उनके मत को अस्वीकार कर रहे हैं।

सुत्तनिपात में एक स्थान पर कहा गया है कि इसी कारण धनी ब्राहम्ण भी गौतम बुद्ध के धम्म और संघ की शरण में आ रहे हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा जिनमें पूर्ण ज्ञान तथा नैतिकता हो, वह देव तथा मनुष्य सब में श्रेष्ठ होता है। जैसे अग्नि सभी प्रकार की लकडियों से प्रज्वलित हो सकती है उसी प्रकार सभी जाति के लोग श्रवण होकर निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। अर्हत की स्थिति प्राप्त करने पर तो व्यक्ति के लिए वर्ण व्यवस्था निस्सार हो जाती है। जैसे गंगा, यमुना, सरयू आदि नदियों समुद्र में मिलने पर अपनी विशिष्टता खो देती है उसी प्रकार श्रवण जीवन अपनाने पर वर्षों की पहचान समाप्त हो जाती है। बुद्ध ने अपने क्रातिकारी उ?द्घोष में कहा है कि 'जीव हत्या करने वाले, अनैतिक कर्म करने वाले, सभी लोग मरणोपरात नरक जायेंगे। इस प्रकार अच्छे कर्म करने वाले सभी लोग मरणोपरान्त स्वर्ग में जाएँगे इस प्रकार बौद्ध धर्म समाज में व्याप्त वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध करते हुए धर्म का मूलभाव अर्थात् मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया तथा प्रकृति प्रदत्त समस्त घटकों के प्रति गैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा की नीति अपनाया। बुद्ध का ये ब्रहाविहार का सिद्धांत न सिर्फ बौद्ध भिक्षु बल्कि जनसामान्य के लिए भी अनिवार्य बताया गया। इससे समाज को निश्चित रूप से एक दिशा मिली तथा सभी को एक दूसरे से जोडने का काम किया।

सच में देखा जाय तो बुद्ध एक समाज सुधारक थे. दार्शनिक नहीं। दार्शनिक उसे कहते हैं जो ईश्वर, आत्मा जगत् जैसे विषयों पर चिन्तन करता है। जब हम बुद्ध की शिक्षाओं का सिहावलोकन करते हैं तो उसमें नैतिक शिक्षा, तार्किक विद्या, मनोरंजन ज्यादा पाते हैं तथा उस समय के तात्कालिक परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं के समाधान पर ध्यान अधिक पाते है, पे विवादित विषय पर मौन रहना ज्यादा पसन्द करते थे। उनका मूल उद्देश्य विवादित विषय पर समय बर्बाद करने के बजाय दर्शन के मुख्य उ?द्देश्य मनुष्य को दुख से छुटकारा दिलाना है। संसार में दुख ही दुःख है रोग, बुढ़ापा, मृत्यु, चिन्ता, असन्तोष, नैराश्य, शोक इत्यादि दुख है। जिसे लोग सुख रागझते हैं वो भी दुःख ही है, क्योंकि जब हम सुख की अनुभूति प्राप्त करते है जरा समय भी उरो सुख समाप्त होने का भय बना रहता है उससे दुःख ही दुःख है तो उससे मुक्ति कैसे पाया जाए। बुद्ध ने इस दुख के बारह कारण बताये हैं जिसे द्वितीय आर्य सत्य में वर्णन किये हैं। इसी सिद्धात को संस्कृत में प्रतीत्यसमुत्पाद कहा जाता है। प्रतीत्यसमुत्पाद दो शब्दों के योग से बना है-प्रतीत्य और समुत्पाद। प्रतीत्य का अर्थ है किसी वस्तु के उपस्थित होने पर, समुत्पाद का अर्थ है किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। इसलिए प्रतीत्यसमुत्पाद का शाब्दिक अर्थ होता है एक वस्तु के उपस्थित होने पर किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति अर्थात् एक के आगमन से दूसरे की उत्पत्ति। यहाँ दुख के कारण के रूप में बुद्ध ने बारह कारणों को दर्शाये है जो एक दूसरे को जन्म देता है।

महात्मा बुद्ध द्वारा बताये गये यह आष्टांगिक न सिर्फ दुःख निवृत्ति का मार्ग है बल्कि सामाजिक समरसता के लिए भी संजीवनी बूटी का काम करता है। जैसे सम्यक् वाक्, अर्थात् सत्य बोलना। कोई व्यक्ति सम्यक् वाक् का पालन तभी कर सकता है जब वह निरन्तर सत्य एवं प्रिय बोलता हो। सम्यक् वाक् सिर्फ सत्य बोलने तक सीमित नहीं है, बल्कि वो वचन जिसे बोलने से दूसरे व्यक्ति को कष्ट होता हो वैसे वचनों पर भी नियंत्रण आवश्यक है। दूसरों की निन्दा भी निन्दनीय है। इसी तरह सम्यक् न का पालन अर्थात् अच्छा कर्म करना एवं बुरे कर्मो का त्याग भी आवश्यक है। बुद्ध ने तीन बुरे कर्म बताये है- हिंसा, अस्तेय और इन्द्रियमोग। सभी को इन तीनों बुरे कर्मो से बचना चाहिए। इसी तरह सम्यक् आजीविका अर्थात् ईमानदारी से जीविकोपार्जन करना। जीविका निर्वाह का ढंग उचित होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति निर्वाह के लिए अनुचित मार्गों का सहारा लेते हैं तो वह दुःख से छुटकारा नहीं पा सकता। धोखा, रिश्वत, लूट, अत्याचार, पद का दुरुपयोग आदि अशुभ उपायों से जीविका निर्वाह करना महान पाप है।' इस हम देखते है कि बुद्ध ने जो दुःख निवृत्ति के मार्ग बताएँ हैं, यदि सही रूप में उसका पालन किया जाये तो वास्तव में एक आदर्श समाज स्थापित हो सकता है जिसकी कल्पना समकालीन युग में महात्मा गाँधी ने किया था। इस तरह हम देखते है कि उन्होंने नीतिशास्त्र की आधारशिला मानवीयता एवं नैतिक मूल्यों पर रखी और समाज दर्शन को जन्म दिया जो मनुष्य मात्र की समता, स्वतन्त्रता बन्धुत्व और न्याय को प्रतिपादित करता है। इसलिए डॉ0 अम्बेडकर ने महात्मा बुद्ध को सबसे बड़ा समाजवादी बतलाया। अम्बेडकर का मानना था कि महात्मा बुद्ध न केवल भारत के उद्धारक थे अपितु सम्पूर्ण विश्व के उन्नायक थे। अम्बेडकर के अनुसार स्वाधीन समाज के लिए धर्म आवश्यकता है। धर्म समाज को बिखराव से बचाता है. लेकिन धर्म विवेक सम्मत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुरूप होना चाहिए। जो धर्म आपस में जोड़ने के बदले तोड़ने का काम करता है वह धर्म नहीं, बौद्ध धर्म में तीन गुण-प्रज्ञा, करुणा और समता ऐसे है जो अन्य धर्म में दुर्लन हैं, तथा इसकी तुलना किसी अन्य धर्म के साथ नहीं की जा सकती है। अम्बेडकर के अनुसार समाज में समानता लाने के लिए धम्म ही सबसे अनुकूल है तथा बौद्ध धर्म की अधिक लोकतात्रिक, नैतिक और समतावादी है। इसलिए यही सबसे श्रेष्ठ धर्म है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल जिस संक्रमण से गुजर रहा था उसमें बुद्ध ने मानव जीवन को केन्द्र में रख कर मानवतावादी जीवन दर्शन स्थापित किया। समाज में बहुत बड़ा परिवर्तन लाया। बौद्ध धर्म ने जातिभेद, चार्तुवर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता, धार्मिक अन्धविश्वास, कर्मकाण्ड, यज्ञ बलि और समस्त तत्वमीमांसीय विषयों का निषेध कर मानवतावादी धर्म स्थापित करने का काम किया। उन्होंने बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का उपदेश दिया। उनका दर्शन आत्मदीपो भव अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनों के विश्वास पर आधारित है। उन्होंने काल्पनिक शक्ति में विश्वास करने के बजाय कर्मवाद को अधिक महत्व दिया। कोई भी व्यक्ति अपने कर्म के बल पर बुद्धत्व को प्राप्त कर सकता है। अतः बौद्ध धर्म का सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ :-

1. A.W. Green-Sociology-p-615
2. GinWerg-Social change, British Journal of Sociology.
3. डी एन. भ. शेंट इण्डिया ऐन इंट्रोडेक्टरी आउट लाईन, नई दिल्ली. 1977 पृ-29
4. सुत्तनिपात
5. संयुक्त निकाय 01.08. पृ. 45
6. मज्झिम निकाय 01.05 04
7. धम्मपद 213
8. डॉ0 ओम प्रकाश टाक आधुनिक भारतीय चिन्तन पृ-128
9. कुबेर, डब्लू एन. आधुनिक भारत के निर्माता डॉ0 अम्बेडकर पृ- 71

***